2025:CGHC:47081–DB

प्रकाशनार्थ अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

दाण्डिक पुनरीक्षण क्रमांक 100/2016

निर्णय सुरक्षित रखने का दिनाँक 01.09.2025

निर्णय पारित करने का दिनाँक 15.09.2025

1– अभयनारायण पाण्डेय पिता आदित्य नारायण पाण्डेय, आयु लगभग 55 वर्ष, निवासी– खिज्रुपथ, मिंज निवास नमनाकला, वार्ड नं. 11, थाना एवं तहसील अंबिकापुर, जिला सरगुजा (छत्तीसगढ़)

––– आवेदक

विरुद्ध

1– ललितेश्वर श्रीवास्तव (विलोपित) माननीय न्यायालय के आदेश दिनांक 01–09–2025 के अनुसार।

2– प्रमोद ओझा पिता बैकुंठ ओझा, आयु लगभग 50 वर्ष, व्यवसाय– उत्तरवादी क्रमांक 1 के मित्र, निवासी– फुंदुरडिहारी महुआपाड़ा, थाना एवं तहसील अंबिकापुर, जिला सरगुजा (छत्तीसगढ़)।

3– महेंद्र यादव पिता श्री विश्वनाथ यादव, आयु लगभग 50 वर्ष, व्यवसाय– उत्तरवादी क्रमांक 1 के पुरुष मित्र, वर्तमान निवासी– डीपाडीहकला, थाना एवं तहसील शंकरगढ़, जिला बलरामपुर–रामानुजगंज (छत्तीसगढ़)।

4– संतोष दास पिता श्री केशव प्रसाद दास, आयु लगभग 38 वर्ष, व्यवसाय– सचिव, साक्षी समाजसेवी संस्था, नमनाकला, पावर हाउस के सामने अंबिकापुर, थाना अंबिकापुर, सरगुजा (छत्तीसगढ़)।

5– छत्तीसगढ़ राज्य, द्वारा थाना सिटी कोतवाली अंबिकापुर, जिला सरगुजा (छत्तीसगढ़)।

––– अनावेदक/उत्तरवादीगण

आवेदक की ओर से:	श्री दुर्गेश गोयल, अधिवक्ता की ओर से श्री मनहरण लाल साहू, अधिवक्ता
राज्य की ओर से:	श्रीमती सुनीता साहू, पैनल अधिवक्ता
उत्तरवादीगण क्रमांक 1 से 3 की ओर से:	श्रीमती उत्तरा श्रीवास्तव, अधिवक्ता की ओर से सुश्री सीमा वर्मा, अधिवक्ता

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

खण्डपीठ

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रजनी दुबे एवं

माननीय न्यायमूर्ति श्री अमितेन्द्र किशोर प्रसाद

सी.ए.वी. निर्णय

द्वारा: अमितेन्द्र किशोर प्रसाद, न्यायमूर्ति

1. यह पुनरीक्षण याचिका दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 397/401 के अधीन परिवादी द्वारा विद्वान विशेष न्यायाधीश, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम, 1988 (संक्षिप्त में'अधिनियम,1988'),सरगुजा स्थित अंबिकापुर द्वारा विविध प्रकरण क्रमांक: अपंजीकृत/2015 में दिनांक 24.08.2015 को पारित आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है। जिसमें आवेदक द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 के अधीन अधिनियम, 1988 की धारा 7, 13(1)(घ), 13(2) तथा भारतीय दण्ड संहिता(संक्षिप्त में भा.द.सं.) की धारा 409, 417, 420, 423, 467, 468, 471 व 120–ख के अपराधों के लिए प्रस्तुत परिवाद को निरस्त कर दिया गया था।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

2. प्रकरण के तथ्य संक्षिप्त में यह हैं कि उत्तरवादीगण/अनावेदकों ने सामाजिक सेवा संगठन चलाने की आड़ में, वर्ष 2004–05 से 2006–07 के दौरान *सेतु पाठ्यक्रम/वैकल्पिक एवं नवाचारी शिक्षा योजना* के अधीन आवंटित 1,44,20,000/– रुपये से अधिक की शासकीय धनराशि का कूटरचित दस्तावेज तैयार और प्रस्तुत कर गबन करके एक गंभीर दाण्डिक अपराध किया है। परिवादी के अनुसार, उक्त योजना का प्रयोजन उन 6 से 14 वर्ष की आयु के बालकों की पहचान करना था, जिन्होंने या तो आर्थिक तंगी के कारण कभी शाला में प्रवेश नहीं लिया था या अध्ययन छोड़ दिया था, और उनके लिए आवासीय केंद्र संचालित करना था जो शिक्षा और भोजन दोनों प्रदान कर सकें। यह आरोप लगाया गया था कि उत्तरवादीगण ने झूठा दावा किया कि उन्होंने ऐसे केंद्रों का संचालन किया है, कर्मचारियों और नामांकित बालकों के कूटरचित दस्तावेज बनाए, और शासन से प्राप्त धन का दुर्विनियोग किया। परिवाद में आगे व्यक्त किया गया है कि उत्तरवादी क्रमांक 1 और उत्तरवादी क्रमांक 4 की अध्यक्षता वाली संस्थाओं को राजीव गांधी शिक्षा मिशन, अंबिकापुर द्वारा विभिन्न विकास खंडों में केंद्र संचालित करने के लिए पर्याप्त राशि स्वीकृत की गई थी। यद्यपि, संबंधित खंड शिक्षा अधिकारियों, ग्राम पंचायतों और यहां तक कि प्रभावित शिक्षकों द्वारा सत्यापन किए जाने पर यह प्रकट हुआ कि वास्तव में ऐसे कोई केंद्र नहीं चलाए गए थे और प्रस्तुत किए गए दस्तावेज कूटरचित थे। कलेक्टर और पुलिस महानिरीक्षक सहित उच्च अधिकारियों के समक्ष शिकायत दर्ज कराने के बावजूद, उत्तरवादीगण के विरुद्ध कोई दाण्डिक कार्रवाई प्रारंभ नहीं की गई। परिणामस्वरूप, परिवादी को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 के अधीन वर्तमान निज परिवाद प्रस्तुत करने हेतु विवश होना पड़ा।

3. विचारण न्यायालय ने परिवाद और अभिलेख पर प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने के उपरांत यह अभिनिर्धारित किया कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के प्रावधान केवल उन्हीं "लोक सेवकों"के विरुद्ध प्रभावी होते हैं, जिन्हें उक्त अधिनियम की धारा 2(ग) के अधीन परिभाषित किया गया है। चूंकि उत्तरवादी निज गैर–शासकीय संगठनों /संस्थाओं के पदाधिकारी हैं, अतः वे "लोक सेवक" की परिधि में नहीं आते हैं। इसके अतिरिक्त, अधिनियम की धारा 19 के अधीन अभियोजन हेतु कोई पूर्व स्वीकृति प्राप्त नहीं की गई थी। तदनुसार, न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि उक्त अधिनियम की धारा 7 व 13 के अधीन परिवाद पोषणीय नहीं था। अतः, परिवाद को खारिज कर दिया गया।

4. आवेदक/परिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क किया है कि विचारण न्यायालय ने प्रारंभिक स्तर पर ही परिवाद को खारिज करके त्रुटि की है। उन्होंने आगे यह तर्क किया कि परिवाद में लगाए गए आरोपों से स्पष्ट रूप से भारतीय दण्ड संहिता के अधीन दण्डनीय दुर्विनियोजन, धोखाधड़ी, कूटरचना और दाण्डिक षडयंत्र जैसे गंभीर अपराधों का होना प्रकट होता है। उन्होंने यह भी तर्क किया कि चूंकि एक लोक कल्याणकारी योजना के अधीन शासकीय धन उत्तरवादीगण को सौंपा गया था, इसलिए वे लोक सेवकों के समान ही लोक कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे थे। अतः, उन पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के प्रावधान लागू होने चाहिए। उन्होंने यह भी तर्क किया कि विचारण न्यायालय ने परिवाद को प्रत्यक्ष तौर पर अस्वीकार करके एक अति–तकनीकी दृष्टिकोण अपनाया है, जबकि प्रकरण के तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 202 के अधीन जांच का निर्देश दिया जाना न्यायोचित था। तदनुसार, यह प्रार्थना की जाती है कि आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाए।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

5. इसके विपरीत, उत्तरवादीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया और यह तर्क किया कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 केवल उन "लोक सेवकों" पर लागू होता है जो इसकी धारा 2(ग) के अधीन परिभाषित हैं, और उत्तरवादी, निज संस्था के सदस्य होने के कारण, उस परिभाषा के परिधि में नहीं आते हैं। अधिनियम, 1988 की धारा 19 के अधीन पूर्व स्वीकृति के अभाव में, उक्त अधिनियम की धारा 7 या 13 के अधीन कोई भी अभियोजन वैध रूप से नहीं चलाया जा सकता था। उन्होंने आगे यह तर्क किया कि परिवाद स्वयं उन आरोपों पर आधारित था जिनकी प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा पहले ही जाँच की जा चुकी थी, और किसी भी स्थिति में, विचारण न्यायालय द्वारा परिवाद को पोषणीय न मानते हुए खारिज करना न्यायोचित था।

6. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने भी विचारण न्यायालय के तर्क का समर्थन किया और यह तर्क किया कि कोई ऐसी अवैधता नहीं की गई है जिसके लिए पुनरीक्षण में हस्तक्षेप की आवश्यकता हो।

7. हमने पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्तागण को सुना है तथा अभिलेख का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया है।

8. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **मनीष त्रिवेदी विरुद्ध राजस्थान राज्य, (2014) 14 एससीसी 420** में प्रकाशित प्रकरण में, कण्डिकाएँ 7 व 8 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:–

> **7.** अपने तर्कों के समर्थन में श्री अधियारु ने इस न्यायालय द्वारा आर.एस. नायक विरुद्ध ए.आर. अंतुले[1] के प्रकरण में पारित निर्णय का अवलंब लिया है। उन्होंने उक्त निर्णय के निम्नलिखित अंश की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है: (एस.सी.सी. पृष्ठ 221–23, कण्डिकाएँ 41 व 42)
>
> "41.... जो कुछ भी हो, यह निष्कर्ष अपरिहार्य है कि कम से कम 1964 तक, धारा 21 में 'लोक सेवक' की परिभाषा के अंतर्गत विधायक को शामिल नहीं किया गया था। और संथानम समिति ने भी धारा 21 में 'लोक सेवक' की परिभाषा में इसे शामिल करने की अनुशंसा नहीं की थी।
>
> 42... अब यदि 1964 के अधिनियम 40 के अधिनियमन से पूर्व, विधायक को धारा 21 के अधीन लोक सेवक के रूप में नहीं समझा गया था, तो आगामी प्रश्न यह है कि: क्या संशोधन ने उसकी स्थिति में कोई परिवर्तन किया है। संशोधन विधि को वस्तुतः अपरिवर्तित रखता है। खंड (9) के अंतिम भाग को खंड (12)(क) के रूप में अधिनियमित किया गया था। यदि इसके संशोधन और विच्छेदन से पूर्व विधायक को खंड (9) में शामिल नहीं किया गया था, तो यदि खंड (9) के एक भाग को खंड (12)(क) के रूप में पुनः अधिनियमित किया जाता है, तो इससे विधि के अर्थ में कोई अंतर नहीं आएगा। यह एक आवश्यक परिणाम के रूप में माना जाना चाहिए कि 1964 के संशोधन अधिनियम 40 द्वारा खंड (9) और (12) के संशोधन ने, 1964 के संशोधन के बाद खंड (9) और खंड (12)(क) की व्याख्या में कोई बदलाव नहीं किया है। ... इसलिए, अन्य किसी भी चीज़ के अतिरिक्त, धारा 21 के ऐतिहासिक विकास पर, जिसे व्याख्या के बाहरी सहायता के रूप में अपनाया गया है, कोई भी विश्वासपूर्वक कह सकता है कि विधायक, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 21 के किसी भी खंड के अर्थ के भीतर 'लोक सेवक' नहीं था और न ही है।" (बल दिया गया)
>
> **8.** एक अन्य निर्णय जिसका अवलंब अधिवक्ता द्वारा लिया गया है, वह इस न्यायालय का रमेश बालकृष्ण कुलकर्णी विरुद्ध महाराष्ट्र राज्य[2] के प्रकरण में पारित निर्णय है और उन्होंने उक्त निर्णय के कण्डिका 5 की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है जो निम्नानुसार है: (एस.सी.सी. पृष्ठ 608)

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

1 (1984) 2 SCC 183 : 1984 SCC (Cri) 172
2 (1985) 3 SCC 606 : 1985 SCC (Cri) 407

"5. इस निर्णय को दृष्टिगत रखते हुए, हमें इस विषय पर अन्य प्राधिकरणों पर जाने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी, हमारा यह अभिमत है कि 'लोक सेवक' की अवधारणा नगर निगम पार्षद की अवधारणा से काफी भिन्न है। एक 'लोक सेवक' वह प्राधिकारी है जिसे शासन या अर्ध–शासकीय निकाय द्वारा नियुक्त किया जाना चाहिए और वह उसी के वेतन या पारिश्रमिक पर होना चाहिए। दूसरे, एक 'लोक सेवक' को शासन द्वारा बनाए गए नियमों और विनियमों के अनुसार अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना होता है। दूसरी ओर, एक नगर निगम पार्षद अपनी नियुक्ति के लिए किसी शासकीय प्राधिकारी का ऋणी नहीं होता है। ऐसा व्यक्ति जनता द्वारा चुना जाता है और शासकीय प्राधिकारी के आदेशों या फरमानों से बेअसर होकर कार्य करता है। मात्र यह तथ्य कि एक विधायक को मानदेय के रूप में भत्ता मिलता है, उसकी स्थिति को 'लोक सेवक' में परिवर्तित नहीं करता है। आर.एस. नायक विरुद्ध ए.आर. अंतुले के प्रकरण में संविधान पीठ के विद्वान न्यायाधिपतिगण ने भारतीय दण्ड संहिता की धारा 21 द्वारा परिकल्पित 'लोक सेवक' की अवधारणा के संपूर्ण इतिहास और विकास का उल्लेख किया है।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

9. इसके अतिरिक्त, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **प्रदीप कुमार बिस्वास विरुद्ध इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ केमिकल बायोलॉजी व अन्य, (2002) 5 एससीसी 111** में प्रकाशित प्रकरण में 'लोक सेवक' शब्द को परिभाषित किया है। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि शासकीय धन प्राप्तकर्ता या लोक कार्यों का संपादनकर्ता सभी व्यक्तियों को स्वतः "लोक सेवक" नहीं माना जाता है। निर्णायक कारक यह है कि क्या वह निकाय अनुच्छेद 12 के अधीन "राज्य" है या पर्याप्त शासकीय नियंत्रण के साथ लोक कर्तव्य का निर्वहन करता है।

10. इसके साथ ही, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **आर. एस. नायक विरुद्ध ए. आर. अंतुले, (1984) 2 एससीसी 183** में प्रकाशित प्रकरण में स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि केवल वे व्यक्ति जो धारा 2(ग) की परिभाषा के अंतर्गत आते हैं, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अभियोजन के पात्र हैं। यह अधिनियम निज व्यक्तियों पर तब तक लागू नहीं होता जब तक कि उन्हें लोक सेवक के रूप में न दर्शाया गया हो।

11. इसी प्रकार, **मध्य प्रदेश राज्य विरुद्ध शीतला सहाय, (2009) 8 एससीसी 617** में प्रकाशित प्रकरण में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अभियोजन हेतु धारा 19 के अधीन मंजूरी एक पूर्व–शर्त है। इसकी अनुपस्थिति एक घातक दोष है, जब तक कि अभियुक्त संज्ञान लेने के समय लोक सेवक न हो।

12. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 397/401 के अधीन पुनरीक्षण अधिकारिता की परिधि के संबंध में, पुनरीक्षण न्यायालय साक्ष्यों का पुर्नविवेचन नहीं कर सकता या अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य नहीं कर सकता। माननीय उच्चतम न्यायालय ने **अमित कपूर विरुद्ध रमेश चंद्र, (2012) 9 एससीसी 460** में प्रकाशित प्रकरण में इसी विवाद्यक पर विचार किया है और दोहराया है कि पुनरीक्षण अधिकारिता में हस्तक्षेप केवल तभी उचित है जब विचारण न्यायालय का आदेश दोषपूर्ण , स्पष्ट रूप से अवैध हो, या न्याय की विफलता का कारण बनता हो।

13. वर्तमान प्रकरण पर लौटते हुए, माननीय उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त सिद्धांतों से यह स्पष्ट है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 397/401 के अधीन पुनरीक्षण अधिकारिता का दायरा सीमित है। पुनरीक्षण न्यायालय तब तक अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य नहीं कर सकता या साक्ष्यों का पुर्नविवेचन नहीं कर सकता, जब तक कि निष्कर्षों में स्पष्ट अवैधता, प्रत्यक्ष दोष न हो, या वे न्याय की विफलता का परिणाम न हों। वर्तमान प्रकरण में, विद्वान विचारण न्यायालय ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 2(ग) की उचित व्याख्या की है, और उचित रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि उत्तरवादी, निज संस्थानों/गैर–शासकीय संगठनों के सदस्य होने के कारण, "लोक सेवक" की परिभाषा के भीतर नहीं आते हैं। फलस्वरूप, अधिनियम, 1988 की धारा 7 और 13 के प्रावधानों को लागू नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त, उक्त अधिनियम की धारा 19 के अधीन मंजूरी, लोक सेवकों के विरुद्ध संज्ञान लेने के लिए एक अनिवार्य पूर्व–शर्त है। वर्तमान प्रकरण में ऐसी कोई मंजूरी विद्यमान नहीं है। इसलिए, विचारण न्यायालय का यह मानना उचित था कि अधिनियम, 1988 के अधीन शिकायत पोषणीय नहीं थी।

WebCopy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

14. भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत अपराधों के संबंध में, विचारण न्यायालय ने आरोपों तथा उनके समर्थन में प्रस्तुत दस्तावेजों का परीक्षण किया है। इसकी विवेचना के उपरांत यह पाया कि आगे की कार्यवाही हेतु कोई पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं है। यह दृष्टिकोण, संभाव्य एवं विधिसंगत होने के कारण, पुनरीक्षण अधिकारिता के प्रयोग में तब तक हस्तक्षेप योग्य नहीं है,जब तक यह प्रदर्शित न किया जाए कि उक्त दृष्टिकोण विकृत या घोर रूप से त्रुटिपूर्ण है। आवेदक द्वारा ऐसी किसी भी प्रकार की विकृति अथवा अवैधता प्रदर्शित नहीं की गई है।

15. उपरोक्त विश्लेषण के आलोक में, यह न्यायालय विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 24.08.2015 को पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता, अनियमितता या अनुचितता नहीं पाता है।

16. तदनुसार, यह दाण्डिक पुनरीक्षण याचिका खारिज की जाती है।

सही/–
(रजनी दुबे)
न्यायाधीश

सही/–
(अमितेन्द्र किशोर प्रसाद)
न्यायाधीश

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरणः हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयी एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु **निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।**

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur